13

शुन:शेपोपाख्यान-2

प्रस्तावना

वेद में जैसे सूक्तो का वर्णन है, वैसे ही आख्यान का भी वर्णन प्राप्त होता है। इसी प्रकार का एक उपाख्यान है। वह शुन:शेप उपाख्यान इस नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेद के ऐतरेयब्राह्मण का तैतीसवें अध्याय में इस उपाख्यान का वर्णन है। यह उपाख्यान अत्यधिक विशाल है। अत: यद्यपि एक ही विषय का वर्णन है, फिर भी उपाख्यान का तीन भागों की कल्पना करके तीन पाठों की रचना की है। तीनों पाठों में सम्पूर्ण उपाख्यान है ऐसा जानना चाहिए। पूर्वपाठ में शुन:शेप उपाख्यान पढ़ा है। वहाँ शुन:शेप उपाख्यान के पांच खण्डो में प्रथम खण्ड और दूसरे खण्ड का वर्णन किया गया है। इस पाठ में आप शुन:शेप उपाख्यान के तीसरे खण्ड और चौथे खण्ड को पढेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- शुन:शेप उपाख्यान को जान पाने में;
- शुन:शेप उपाख्यान पढ़ने से नीतिशिक्षा को प्राप्त कर पाने में;
- तीसरे खण्ड के विषय को जान पाने में;
- चौथे खण्ड के विषय को जान पाने में;
- अपने आप ही मन्त्रों की व्याख्या करने में समर्थ बन पाने में;
- अपने आप ही मन्त्रों का अन्वय आदि विषय को जान पाने में;
- मन्त्र में स्थित व्याकरण को जान पाने में।

टिप्पणी

तीसराखण्ड

13.1 अब मूलपाठ को पढेंगे

अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होदरं जज्ञे तदु ह रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति॥

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।

शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति॥ इति।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-
कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।

उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति इति।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह पञ्चमं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति। इति।
चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

तस्य ह त्रयः पुत्रः आसुः शुनःशेपः शुनोलाङ्गुल इति तं होवाच ऋषेऽहं ते शतं ददाम्यहमेषामेषामेकेनात्मानं निष्क्रीणा इति स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान् उवाच न न्विममिति ने एवेममिति कनिष्ठं माता तौ ह मध्यमे

संपादयां चक्रतुः शुनःशेपे तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद् ग्राममेयाय इति।

स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा इति स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति तथेति भूयान् वै ब्राह्मणः क्षत्रियादिति वरुण उवाच तस्मा एतं राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच तमेतमभिषेचनीये पुरुषं पशुमालेभे इति।

चौथाखण्ड

तस्य ह विश्वामित्रो होताऽहसीज्जदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माऽयास्य उद्गाता तस्मा उपकृताय नियोक्तारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुस्तं स निनियोज इति।

तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय विशसितारं न विविदुः स होवाचाजीगर्तः सौयव-सिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुः सोऽसिं निःशान एयाय इति।

अथ ह शुनःशेप ईक्षांचक्रेऽमानुषामिव वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार कस्य नूनं कतमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोऽग्निमुपससारागे्नर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

तमग्निरुवाच सविता वै प्रसवानामीशे तमेवोपधा-वेति स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्ये-तेन तृचेन इति।

तं सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि तमे-वोपधावेति स वरुणं राजानमुपससारात उत्तराभिरेकत्रिंशता इति।

तं वरुण उवाचग्निर्वै देवानां मुखं सुहृ-
दयतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽग्नि तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविमशत्या इति।

तमग्निरुवाच विश्वान्नु देवान्स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स विश्वान्देवांस्तुष्टाव नमो महद्भ्यो नमो
अर्भकेभ्यो इत्येतयर्चा इति।

तं विश्वे देवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो
वलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमस्तं
नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति स इन्द्रं तुष्टाव
यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति
चैत्येन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्च दशभिः इति।

तस्मा इन्द्र स्तूयमानः प्रीतो मनसा हिरण्यरथं
ददौ तमेतया प्रतीयाय शश्वदिन्द्र इति इति।

तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽश्विनौ तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

तमश्विना उचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन। इति

तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय
ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो
मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस॥ इति।

13.1.1 व्याख्या

अथ हैक्ष्वाकं वरुणो जग्राह तस्य होदरं जज्ञे तदु ह
रोहितः शुश्राव सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः पुरुषरूपेण
पर्येत्योवाच-

व्याख्या- वचन भंग करने के कारण वरुण का कोप इक्ष्वाकु-वंशोत्पन्न हरिश्चन्द्र पर 'जलोदर' रोग बन कर टुटा।रोहित ने सुना तो पिता के मोह में उनसे मिलने अरण्य से ग्राम की ओर चला। वह वन से लौट ही रहा था कि मार्ग में उसे पुरुष वेशधारी इन्द्र ने उसे चरैवेति की सूक्ति के साथ अविश्रान्त रहते हुए शाश्वत विचरण का उपदेश दिया।।

सरलार्थ-उसके बाद वरुण ने इक्ष्वाकु वंशीय राजा को अधिकृत किया, उसको उदर रोग हो गया। रोहित ने यह समाचार सुना तो, वह अरण्य से ग्राम को आने लगा। (तब) इन्द्र पुरुष रूप में उसके समीप आकर बोले-

टिप्पणी

व्याकरण-

- उवाच- ब्रू- धातु से लिट्-लकार के प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- जज्ञे - जनी(प्रादुर्भावे) धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।

नानाश्रान्ताय श्रीरस्तीति रोहित शुश्रुम। पापो नृषद्वरो
जन इन्द्र इच्चरतः सखा चरैवेति॥ इति।

व्याख्या- हे रोहित! परिश्रम से थके व्यक्ति को ही विभिन्न प्रकार की श्री प्राप्त हो जाती है ऐसा हमने ज्ञानी जनों से सुना है। एक स्थान पर निष्क्रिय बैठे रहने वाले विद्वान् व्यक्ति तक को लोग तुच्छ मानते हैं। और विचरण में लगे जन का साथी तो इन्द्र होता है। अतः तुम चलते ही रहो ! चर एव ! चरैवेति !॥

अब इन्द्र और रोहित के संवाद में प्रथम पर्याय को दिखाकर द्वितीय पर्याय दिखाता है-

सरलार्थ- हे रोहित, हम सुनते हैं कि जो (भ्रमण से) श्रान्त नहीं होता है उसको बहुविध सम्पत्ति का लाभ नहीं होता है। और श्रेष्ठ जन भी मानव समाज में (एक स्थान में) स्थित होकर सब से अवज्ञात होकर क्लेश प्राप्त करते हैं।

व्याकरण-

- चर- चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- शुश्रुम- श्रु (श्रवणे) धातु से लिट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह द्वितीयं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्म णवाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) द्वितीय वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर् (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एक वचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातू से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातू के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पुष्पिण्यौ चरतो जङ्घे भूष्णुरात्मा फलग्रहिः। शेरेऽस्य
सर्वे पाप्मानः श्रमेण प्रपथे हताश्चरैवेति।

व्याख्या- निरंतर चलने वाले की जंघाए पुष्पित होती हैं, (अर्थात उस वृक्ष की शाखाओं-उपशाखाओं की भांति होती है जिन पर सुगन्धित एवं फलीभूत होने वाले फूल लगते हैं) और उसका शरीर (बढ़ते हुए वृक्ष की भांति फलों से पूरित होता है, अर्थात वह भी) फल ग्रहण करता है। प्रकृष्ट मार्गों पर श्रम के साथ चलते हुए उसके समस्त पाप नष्ट होकर सो जाते हैं (अर्थात निष्प्रभावी हो जाते हैं)। अतः तुम चलते ही रहो, विचरण करते ही रहो! चर एव ! चरैवेति !।।

तृतीय पर्याय को दर्शाता है-

सरलार्थ-जो जन पर्यटन करता है उसकी जाँघ सुनिर्मित होती हैं। एवं वह शोभन सम्पन्न होता है। उसका शरीर बढ़ता है। एवं वह आरोग्य आदि को प्राप्त करता है। उत्कृष्ट मार्ग में पर्यटन जनित श्रम से समस्त पाप विनष्ट होने पर वह शायित होता है। अतः तू विचरण कर।

व्याकरण-

- चर - चर् (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- हताः - हन्-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह तृतीयं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद्ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) तृतीय वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

टिप्पणी

व्याकरण-

- चर - चृर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चृर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच्(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

आस्ते भग आसीनस्योर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः।
शेते निपद्यमानस्य चराति चरतो भगश्चरैवेति इति।

व्याख्या- जो मनुष्य बैठा रहता है, उसका भग(भाग्य या सौभाग्य) भी रुका रहता है। जो उठ खड़ा होता है उसका सौभाग्य भी उसी प्रकार उठता है। जो पड़ा या लेटा रहता है उसका सौभाग्य भी सो जाता है। और जो विचरण में लगता है उसका सौभाग्य भी चलने लगता है। इसलिए तुम विचरण करते ही रहो! चर एव! चरैवेति!।।

सरलार्थ-जो जन आसनस्थ होता है उसका भाग्य भी आसनस्थ हो जाता है, जो उत्थित होता है उसका भाग्य भी उत्थित हो जाता है। जो सोता है उसका भाग्य भी सो जाता है। जो पर्यटन करता है उसका भाग्य भी सर्वदा विचरण करता रहता है। अतः तू सदा विचर।

व्याकरण-

- चर - चर् (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- तिष्ठतः - स्था- धातु के लट्-लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- शेते- शीङ्-धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- पूर्ववत्।(ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।)

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) चतुर्थ वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

टिप्पणी

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरंश्चरैवेति इति।

व्याख्या- शयन की अवस्था कलियुग के समान है, जगकर सचेत होना द्वापर के समान है, उठ खड़ा होना त्रेता के सदृश है, और उद्यम में संलग्न एवं चलन शील होना कृतयुग (सतयुग) के समान है। अतः तुम चलते ही रहो। चर एव! चरैवेति!।

पंञ्चम पर्याय को दिखाता है-

सरलार्थ-शयन की अवस्था कलियुग, जगकर सचेत होना द्वापर, उठ खड़ा होना त्रेता, कृत में विचरण से सम्पदा का लाभ होता है। अतः विचर।

(कलि, द्वापर, त्रेता, और कृत ये चार पौराणिक युग विभाग के नाम हैं। इनके उत्तरोत्तर श्रेष्ठ प्रतिपादन के लिए पुरुष की चार अवस्था प्रतिपादित हैं- निद्रा, जागरण, उत्थान, और विचरण। ये क्रम से पुरुष की ऊर्ध्वगति की सूचना देते हैं।)

व्याकरण-

- संपद्यते- सम् उपसर्ग पूर्वक पद् (गतौ) धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचनमें यह रूप सिद्ध होता है।
- चर - चर (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह चतुर्थं
संवत्सरमरण्ये चचार सोऽरण्याद् ग्राममेयाय तमिन्द्रः
पुरुषरूपेण पर्येत्योवाच-

व्याख्या- पूर्ववत्।(ब्राह्मण रूपी इन्द्र के इस वाक्य को सुनकर इस ब्राह्मण ने मेरे लिए कहा ऐसा सोचकर अरण्य में जाकर चरैवेति ऐसा करने लगा मन में ब्राह्मण वाक्य में महान् आदर करके पुनः एक संवत्सर अरण्य में विचरण करके फिर पिता को देखने के लिए ग्राम को आते हुए उसे देखकर पुनः इन्द्र ब्राह्मण के रूप में आकर उसे कहने लगा।)

शुनःशेपोपाख्यान-2

टिप्पणी

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) पञ्चम वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुषरूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरन् वै मधु विन्दति चरन् स्वादुमुदुम्बरम्।
सूर्यस्य पश्य श्रेमाणं यो न तन्द्रयते चरंश्चरैवेति। इति।

व्याख्या- इधर उधर करते हुए मनुष्य को मधु प्राप्त होता है, उसे उदुम्बर सरीखे सुस्वादु फल मिलते हैं। सूर्य की श्रेष्ठता को तो देखो जो विचरण करते हुए जरा भी आलस्य नहीं करता है। उसी प्रकार तुम भी चलते रहो! चर एव! चरैवेति!

इस प्रकार इन्द्रके उपदेश से आचरण करते हुए रोहित के अपने जीवन और पिता के आरोग्यका कारण भूत श्रेय लाभ को दिखाया गया है-

सरलार्थ-जो जन विचरण करता है वह मधु (श्रेयवस्तु) प्राप्त करता है, वह मधु से स्वादु उदुम्वर नामक फल को प्राप्त करता है। जो सूर्य सतत विचरण करता हुआ भी आलस्य ग्रस्त नहीं होता है, उस सूर्य के महात्म्य का अवलोकन कर। अतः तू विचरण कर।

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- चरन्- चर (गतौ) धातू का शतृ प्रत्ययान्त रूप है।
- विन्दति - विद् धातु से लट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- पश्य - दृश् (दर्शने) धातु के लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

चरैवेति वै मा ब्राह्मणोऽवोचदिति ह षष्ठं संवत्सरमरण्ये
चचार सोऽजीगर्तं सौयवसिमृषिमशनया परीतमरण्य
उपेयाय इति।

शुन:शेपोपाख्यान-2

व्याख्या- छठे संवत्सर में पूर्ववत् अरण्य सञ्चारी उस रोहित ने किसी ऋषि को उस अरण्य में प्राप्त किया। उसकी भेंट अजीगर्त नामक सूर्यवस के पुत्र से हुए क्षुत्पीडित थे।

अजीगर्त और रोहित के मध्य संवाद दर्शाया गया है-

सरलार्थ- ब्राह्मण ने मुझे विचरण के लिए कहा ऐसा चिन्तन करके उस (रोहित ने) छठे वर्ष भी अरण्य में ही विचरण किया। उसके बाद अरण्य से ग्राम की और आते समय पुरुष रूपी इन्द्र उसके समीप आकर बोला-

व्याकरण-

- चर - चर (गतौ) धातु से लोट्-लकार मध्यम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- चचार - चर-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उवाच- वच्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- अवोचत्- वच(परिभाषणे) धातु के लुङ्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्य ह त्रयः पुत्राः आसुः शुन:पुच्छः शुन:शेपः
शुनोलाङ्गुल इति तं होवाच ऋषेऽहं ते शतं
ददाम्यहमेषामेषामेकेनात्मानं निष्क्रीणा इति

स ज्येष्ठं पुत्रं निगृह्णान् उवाच न न्विममिति ने
एवेममिति कनिष्ठं माता तौ ह मध्यमे संपादयां चक्रतुः
शुन:शेपे तस्य ह शतं दत्त्वा स तमादाय सोऽरण्याद्
ग्राममेयाय इति।

व्याख्या-उस अजीगर्त के शुन:पुच्छादि नामक तीन पुत्र थे। पुत्रवान् ऋषि को रोहित ने कहा। हे ऋषि, तुझे मैं सौ गाय देता हूँ। और देकर मैं इसके बदले में पुत्रों में से किसी एक पुत्र को अपने देह से वरुण को निकालने में मूल्य देकर अपने आप को छुडाऊंगा। ऐसा कहने पर अजीगर्त ने अपने ज्येष्ठ पुत्र शुन:पुच्छ नामक को हाथ से पकड़कर अपने समीप खींचते हुए रोहित को कहा। तुझे एक पुत्र देता हूँ परन्तु यह शुन:पुच्छ तो नहीं देता हूँ। मेरे प्रियत्व के कारण। उसके बाद माता कनिष्ठ पुत्र को हाथ में पकड़ कर बोली। इस शुनो लाङ्गूल मेरे प्रिय को तो हम किसी भी प्रकार न देंगे। उसके बाद उन दोनों माता पिता ने मध्यम पुत्र शुन:शेप को देकर दान को सम्पादित किया तथा अङ्गीकार भी किया। उसके बाद अजीगर्त को रोहित सौ गायें देकर तथा शुन:शेप को लेकर च पड़ा। तब रोहित शुन:शेप के साथ आरण्य से अपने ग्रामको आया।

उसके आगमन से पूर्व का वृत्तान्त दिखाया-

टिप्पणी

सरलार्थ-उसके (ऋषि अजीगर्त के) शुन:पुच्छ, शुन:शेप, तथा शुनोलाङ्गुल तीन पुत्र थे। उसने अजीर्गत को कहा- हे ऋषि मैं आपको एक सौ गायें देता हूँ, इसके बदले में इन पुत्रों में से एक निष्क्रिय को देकर मैं मुक्त हो जाऊंगा। (तब) अजीगर्त ज्येष्ठ पुत्र के समीप जाकर बोले इसको नहीं दूंगा। कनिष्ठ के समीप जाकर माता ने कहा कि इसको नहीं दूंगी। उन दोनों ने शुन:शेप को देने की स्वीकृति दे दी। तब उस ऋषि को एक सौ गायें देकर शुन:शेप को लेकर रोहित अरण्य से ग्राम को आगया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्त्वा - दा- धातु का क्त्वा प्रत्ययान्त रूप है।
- चक्रतु: - कृ-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष द्विवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

स पितरमेत्योवाच तत हन्ताहमनेनात्मानं निष्क्रीणा
इति स वरुणं राजानमुपससारानेन त्वा यजा इति तथेति
भूयान् वै ब्राह्मण: क्षत्रियादिति वरुण उवाच तस्मा एतं
राजसूयं यज्ञक्रतुं प्रोवाच तमेतमभिषेचनीये पुरुषं
पशुमालेभे।। इति।

व्याख्या- वह रोहित पिता के समीप जाकर इस प्रकार बोला। हे तात पितर्हन्तावयोर्हर्ष सम्पन्न। मैं शुन:शेप के रूप में मूल्य देकर देकर अपने आप को छुड़ा रहा हूँ। ऐसा कहने पर हरिश्चन्द्र ने वरुण को कहा शुन:शेप ब्राह्मण से आपका याग करूँगा। वह वरुण भी उसको अङ्गीकार करके इस प्रकार बोला। तुझ क्षत्रिय के पुत्र से अद्रोहित होता हुआ भी यह ब्राह्मण मुझे अधिक प्रिय है। यह कहकर हरिश्चन्द्र को कर्त्तव्यत्वसे राजसूय का उपदेश दिया। हरिश्चन्द्र ने राजसूय के मध्य में अभिषेचनीय सोमयाग में शुन:शेपन पुरुष को पशु बनाने के लिए सवनीय पशुत्व से प्राप्त करवाने का निश्चय किया।

सरलार्थ- रोहित पिता के निकट जाकर बोला हे पिता मैं इस पुरुष को देकर अपनी मुक्ति चहाता हूँ। उसके बाद हरिश्चन्द्र ने राजा वरुण के समीप जाकर कहा कि मैं इस पुरुष से आपका याग करूँगा। वरुणबोला ठीक है। क्षत्रिय से ब्राह्मण अवश्य ही श्रेष्ठ है। ऐसा कहकर हरिश्चन्द्र को उसने राजसूय नामक यज्ञ के अनुष्ठान का उपदेश दिया। हरिश्चन्द्र ने भी अभिषेचनीय यज्ञ में शुन:शेप मनुष्य को पशु के रूप में आदिष्ट किया।

व्याकरण

- हन्ता - हन्-धातु के लुट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन यह रूप बनता है।
- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

- प्रोवाच - प्र उपसर्ग पूर्वक वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- आलेभे- आङ् उपसर्ग पूर्वक लभ्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

पाठगत प्रश्न

85. उदर रोग किसको हुआ?
86. इन्द्र पुरुष के रूप में किसके समीप आये?
87. वरुणने किसको कहा कि मुझे उदर रोग हो गया?
88. कौन अरण्य से ग्राम के प्रति आया?
89. किसका भाग्य आसनस्थ होता है?
90. किसका भाग्य उत्थित होता है?
91. किसका भाग्य शयित होता है?
92. किसका भाग्य सर्वदा विचरण करता है?
93. रोहित कितने वर्ष अरण्य में विचरण करता है?
94. जो जन विचरण करता है वह किस वस्तु को प्राप्त करता है?

13.1.2 व्याख्या

तस्य ह वि श्वामित्रो होताहहसीज्जदग्निरध्वर्युर्वसिष्ठो ब्रह्माहयास्य उद्गाता तस्मा उपकृताय नियोक्तारं न विविदु: स होवाचाजीगर्त: सौयवसिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं नियोक्ष्यामीति तस्मा अपरं शतं ददुस्तं स निनियोज इति।

व्याख्या- विश्वामित्र आदि हरिश्चन्द्र के याग राजसूय में होता आदि चार ऋत्विज थे। जमदग्नि अधवर्यु ने अभिशेचनीय सोमयाग में शुन:शेप को सवनीय पशुत्व से उपकृत किया। बहिर्युक्त प्लक्ष शाखा से मन्त्र पुर:सर समुपस्पृश्य उपाकरण को स्वीकार करा। उसके ऊपर युपबन्धन का नियोजन किया गया। उस क्रूरकर्म के नियोजन के लिए अध्वर्यु प्रवृत्त नहीं हुआ। तब उपाकृत हुए उपाकरण से संस्कृत शुन:शेप को यूप पर बांधने का क्रूर कार्य किसी ने स्वीकार नहीं किया। तभी सुर्यवस के पुत्र शुन:शेप के पिता अजीगर्त ने (कहा) पहले मुझे पूर्व कथित सौ गायें दे दो तो हे यजमान उसके बाद मैं शुन:शेप को खूंटे के बाँध दूंगा, मैं रशना कटी शिर

शुन:शेपोपाख्यान-2

टिप्पणी

पैर रशनाग्र को यूप के बन्धन में नियोजन करूँगा। अत: अजीगर्त को सौ गायें दी। तथा शुन:शेप को अजीगर्त ने बाँधा।

सरलार्थ-उस हरिश्चन्द्र के विश्वामित्र होता, जमदग्नि अध्वर्यु, वशिष्ठ ब्रह्मा और उदगाता रहते हुए। उपाकरण के पश्चात् पशु का नियोक्ता अप्राप्त था। तब सूर्यवस के पुत्र अजीगर्त बोले, मुझे एक सौ गायें दो, मैं उसे खूंटे पर बांधता हूँ। हरिश्चन्द्र ने उसको एक सौ गायें दी। और उसने उसको वहाँ बाधाँ।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्ता- दा-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है।
- विविदु: - विद्-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- ददु: - दा-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्मा उपाकृताय नियुक्तायाऽऽप्रीताय पर्यग्निकृताय
विशसितारं न विविदु: स होवाचाजीगर्त: सौयव-
सिर्मह्यमपरं शतं दत्ताहमेनं विशसिष्यामीति तस्मा
अपरं शतं ददु: सोऽसिं नि:शान एयाय इति।

व्याख्या- उस शुन:शेप के उपाकरण कर्म और नियोजन कर्म की समाप्ति के बाद आप्रीमन्त्र पाठ और पर्यग्निकरण अनुष्ठान की समाप्ति के बाद उसके हनन के लिए कोई भी प्राप्त नहीं हुआ। तब सूर्यवस का पुत्र अजीगर्त बोला मुझे एक सौ गायें और दे दो, तो मैं इसका वध कर दूँगा। हरिश्चन्द्र ने पुन: एक सौ गायें दी। वह भी गायों को लेकर तलवार को तीक्ष्ण करके वहाँ आगया।

पिता अजीगर्त (शुन:शेप) का वृत्तान्त दिखाता है --

सरलार्थ-उस शुन:शेप के उपाकरण कर्म और नियोजन कर्म की समाप्ति के बाद आप्री मन्त्रपाठ और पर्यग्नि करण अनुष्ठान की समाप्ति के बाद उसके हनन के लिए कोई भी प्राप्त नहीं हुआ। तब सूर्यवस का पुत्र अजीगर्त बोला मुझे एक सौ गायें और दे दो, तो मैं इसका वध कर दूँगा। हरिश्चन्द्र ने पुन: एक सौ गायें दी। वह भी तलवार को तीक्ष्ण करके गया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन यह रूप सिद्ध होता है।
- दत्ता- दा-धातु का क्त प्रत्ययान्त रूप है।
- विविदु: - विद्-धातु के लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

- ददु: - दा-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।
- एयाय- इन्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- विशसिष्यामि - वि उपसर्ग पूर्वक णिजन्त शस्-धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष के एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

अथ ह शुन:शेप ईक्षांचक्रेऽमानुषामिव वै मा विशसिष्यन्ति हन्ताहं देवता उपधावामीति स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानामुपससार कस्य नूनं कतमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

व्याख्या- अब पिता के अरण्य उद्योग के बाद शुन:शेप पुत्र मन में समीक्षा करते हुए विचार किया। ''अन्यत्र पर्यग्निकृतं पुरुषमारण्यांश्चोत्सृजन्ति''। अहिंसा की इस श्रुतिमें पर्यग्नि करणादूर्ध्व मनुष्य को छोड़ देता है। ये मेरा अमानव की तरह ही वध करेंगे। अहो मैं देवताओं की शरण में जाता हूँ। ऐसा चिन्तन करके वह देवों में मुख्य प्रजापति की 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से उपासना की।

उस प्रजापति के सबकारित्व से अग्नि की सेवा को दिखाया है--

सरलार्थ:- तब शुन:शेप चिन्तन करता है कि ये मेरा अमानव की तरह ही वध करेंगे। अहो मैं देवताओं की शरण में जाता हूँ। ऐसा चिन्तन करके वह देवों में मुख्य प्रजापति की 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से उपासना की।

व्याकरण-

- ईक्षांचक्रे - अक्ष्-धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- विशसिष्यन्ति - वि उपसर्ग पूर्वक णिजन्त शस्-धातु से लृट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तं प्रजापतिरुवाचाग्निर्वै देवानां नेदिष्ठस्तमेवोपधावेति सोऽग्निमुपससासाग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानामित्येतयर्चा इति।

व्याख्या- उस सेवक शुन:शेप को प्रजापति इस प्रकार बोले। अग्नि सभी देवताओं के नेदिष्ट हविर्वहन से अतिसमीपवर्ती है अत: उसका आश्रय लो। उसने (शुन:शेप ने) 'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से अग्नि की उपासना की।

और उस अग्नि के सहकारित्व से सविता की उपासना दिखाई है--

सरलार्थ- प्रजापति ने उसको कहा- अग्नि ही देवों में निकटतम है। अत: उसका आश्रय लो। उसने (शुन:शेप ने) 'अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानाम्' इस ऋचा से अग्नि की उपासना की।

तमग्निरुवाच सविता वै प्रसवानामीशे तमेवोपधा-
वेति स सवितारमुपससाराभि त्वा देव सवितरित्येतेन
तृचेन इति।

व्याख्या- प्रसवों के सभी कार्यों में प्रेरणा रूप के अनुज्ञान से सविता ईश स्वामी हैं। अत: तू सविता की उपासना कर। उसने भी 'अभि त्वा देव सवित:' इस ऋचा से सविता की उपासना की।

और उस सविता के सहकारित्व से वरुण की उपासना दिखायी गयी है-

सरलार्थ- अग्नि ने (शुन:शेप को) उसको कहा कि सविता ही प्रेरणा दान में समर्थ है, अत: तू सविता की उपासना कर। उसने भी 'अभि त्वा देव सवित:' इस ऋचा से सविता की उपासना की।

तं सवितोवाच वरुणाय वै राज्ञे नियुक्तोऽसि तमे-
वोपधावेति स वरुणं राजानमुपससारात
उत्तराभिरेकत्रिंशता इति।

व्याख्या- हे शुन:शेप तू वरुणार्थ यूप पर बंधा हुआ है सविता ने उसको कहा, तू राजा वरुण के लिए यूप में बन्ध जा। तू उसी की उपासना कर। वह (शुन:शेप) भी पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों के स्थान पर इकत्तीस ऋचाओं से वरुण देवता की उपासना की। न हि ते क्षत्रम् (1-24-6) इत्यादि सूक्त शेषभूत दशर्चो यच्चिद्धि ते विश: (1-29-1) इत्यादि इक्कीस ऋचा सूक्त इक्कतीस संख्या देखनी चाहिए।

उस वरुण के सहकारित्व से फिर भी अग्नि की उपासना दिखाता है-

सरलार्थ- सविता ने उसको कहा, तू राजा वरुण के लिए यूपमें बन्ध जा। तू उसी की उपासना कर। वह (शुन:शेप) भी पूर्वोक्त तीनों मन्त्रों के स्थान पर इकत्तीस ऋचाओं से वरुण देवता की उपासना की।

तं वरुण उवाचग्निर्वै देवानां मुखं सुहृ-
दयतमस्तं नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽलग्न तुष्टावात उत्तराभिर्द्वाविमशत्या इति।

व्याख्या- यह अग्नि सभी देवताओं का मुख और मुख स्थानीय है। अग्नि के द्वारा ही सभी देव आहुति स्वीकार करते हैं। अत: प्रीति के हविर्वहन से अतिशय से सुहृदय है। सुहृदय उस अग्नि की तू शीघ्र ही स्तुति कर ऐसा वरुण ने कहा। उसके बाद ही तुझे मैं मोक्ष दूंगा। तब उसने वायस ऋचाओं से अग्नि की स्तुति की कृतवान्।वसिष्वाहीत्यादिकं (6-26-5) दशर्चं सूक्तम्। अश्वं नत्वा (1-27-1) इत्यादि तेरह ऋचा सूक्त है। अग्नि के सहकारित्व से विश्व के सभी देवताओं की उपासना दिखाई गई है --

सरलार्थ:- वरुण ने उस (शुन:शेप को) कहा- अग्नि ही देवों में मुख्य है, वही श्रेष्ठ सुहृत्

है, अतः शीघ्र ही उसको उद्देश्य करके स्तुति कर। उसके बाद ही तुझे मैं मोक्ष दूंगा। तब उसने वापस ऋचाओं से अग्नि की स्तुति की कृतवान्।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्यामः - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातू से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातू के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तमग्निरुवाच विश्वान्नु देवान्त्स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम
इति स विश्वान्देवांस्तुष्टाव नमो महद्भ्यो नमो
अर्भकेभ्यो इत्येतयर्चा इति।

व्याख्या- यद्यपि वरुण के पाश से बन्धे हुए शुनःशेप को वरुण ही छुड़ा सकता था तथापि अग्नि आदि का सहकारित्व वचन दृढ़ता के लिए द्रष्टव्य है। विश्वेदेव गणरूप नहीं होते हैं उसके बाद 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः' इत्यादि ऋचाओं से विश्वेदेवताओं की स्तुति की।

और उन विश्वे देवताओं के सहकारित्व से इन्द्र की उपासना दिखायी गई है-

सरलार्थ- (तब) अग्नि ने उसको कहा, तू विश्वेदेवताओं की स्तुति कर, तो मैं तुम्हे मोक्ष दूंगा। उसके बाद 'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः' इत्यादि ऋचाओं से विश्वेदेवताओं की स्तुति की।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्स्रक्ष्यामः - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तं विश्वे देवा ऊचुरिन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो
वलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमस्तं
नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति स इन्द्रं तुष्टाव
यच्चिद्धि सत्य सोमपा इति
चैत्येन सूक्तेनोत्तरस्य च पञ्च दशभिः इति।

व्याख्या- ओडोवल आदिशव्द पूर्वाचार्यो के द्वारा ही व्याख्यात है--

टिप्पणी

ओजो दीप्तिर्वलं दाक्ष्यं प्रसह्यकरणं सह:।
सुजन: सन्पारयिष्णुरुपक्रान्तसमाप्तिकृत।इति

इष्ट प्रत्ययतमप्प्रत्ययों से वहाँ अतिशय कहते हैं। वैसे इन्द्र की सत्य सोमपा ने सप्तर्च सूक्त से इन्द्र इत्यादि बाईस ऋचाओं के सूक्त में पन्द्रह ऋचाओं से की। इन्द्र ही देवताओं में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न है, दैहिक बल युक्त है, और सहायक श्रेष्ठ कर्म कारक है। तू उसी की स्तुति कर। तो तुझे हम मोक्ष देंगे। उस शुन:शेप ने 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा:' इत्यादि सूक्तों से और उसके बाद विद्यमान पचास मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की।उस उपदेश के फलपर्यवसायित्व का अनुस्मरण करते हुए इन्द्र से शुन:शेप की प्रीत्यतिशय दिखाई गई है--

सरलार्थ:-इसके बाद विश्वे देवों ने उसे कहा कि इन्द्र ही देवताओं में सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न है, दैहिक बल युक्त है, और सहायक श्रेष्ठ कर्म कारक है। तू उसी की स्तुति कर। तो तुझे हम मोक्ष देंगे। उस शुन:शेप ने 'यच्चिद्धि सत्य सोमपा:' इत्यादि सूक्तों से और उसके बाद विद्यमान पचास मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की।

व्याकरणम्-

- ऊचु: - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- उत्स्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्मा इन्द्र: स्तूयमान: प्रीतो मनसा हिरण्यरथं
ददौ तमेतया प्रतीयाय शश्वदिन्द्र इति इति।

व्याख्या- शुन:शेप से स्तूयमान इंद्र ने प्रसन्न होकर शुनशेप को सुवर्णमय दिव्य रथ आरोहण के लिए अपने मन से ही दिया। शुन:शेप ने भी उसका अनुग्रह जानकर पूर्वोक्त पन्द्रह सूक्तियों से इन्द्र की अर्चना की रथ को मन से ग्रहण किया।

सरलार्थ:- इन्द्र स्तुत होकर प्रसन्न हुआ और मन से उसको हिरण्यमय रथ दिया। वह भी 'शश्वदिन्द्र' मन्त्र से इन्द्रकी स्तुति करने लगा।

व्याकरण-

- स्तूयमान: - ष्टुञ्-धातु शानच्-प्रत्ययान्त रूप है।
- ददौ- दा-धातू से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रुप सिद्ध होता है।

तमिन्द्र उवाचाश्विनौ नु स्तुह्यथ त्वोत्स्रक्ष्याम इति
सोऽश्विनौ तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

व्याख्या- पूर्वोक्त शश्वदिन्द्रो इसके उत्तरेणाश्विनाव श्वावत्या (1-30-27) इस ऋचा से अश्विन की स्तुति की।

अश्विन के सहकारित्व से उषा की स्तुति दिखाता है--

सरलार्थ- इन्द्र ने उसे कहा दोनों अश्विन का स्तवन कर, तो तुझे मोक्ष दूंगा। उसने भी उसके बाद तीन ऋचाओं से दोनों अश्विन का स्तवन किया।

व्याकरण-

- उवाच - वच्- धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष एकवचन में यह रूप बनता है।
- उत्प्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तमश्विना उचतुरुषसं नु स्तुह्यथ त्वोत्प्रक्ष्याम
इति स उषसं तुष्टावात उत्तरेण तृचेन इति।

व्याख्या- कस्त उष: (1-30-20) इत्यादि उत्तरस्तृच है। अथ उक्त सभी देवताओं के अनुग्रह से शुन:शेप का बन्ध मोक्ष और हरिश्चन्द्र का आरोग्य दिखाता है--

सरलार्थ-दोनों अश्विन ने उसे कहा- तू उषादेवी का स्तवन कर। तो मैं तुझे मोक्ष दूंगा। उसके बाद उसने तीन ऋचाओं से उषादेवी का स्तवन किया।

व्याकरण-

- उत्प्रक्ष्याम: - उत् पूर्वक सृज्(विसर्गे) धातु से लृट्-लकार उत्तम पुरुष बहुवचन में यह रूप सिद्ध होता है।
- तुष्टाव - ष्टुञ् (स्तुतौ) धातु के लिट्-लकार उत्तम पुरुष एकवचन में यह रूप सिद्ध होता है।

तस्य ह स्मर्च्यृच्युक्तायां वि पाशो मुमुचे कनीय
ऐक्ष्वाकस्योदरं भवत्युत्तमस्यामेवर्च्युक्तायां वि पाशो
मुमुचेऽगद ऐक्ष्वाक आस॥ इति।

व्याख्या- उस पूर्वेक्त ऋचा के संबन्धिनी एक एक ऋचा कहने से क्रम से शुन:शेप का पाश विमुक्त होता गया विशेष मुक्त हो गया, ऐक्ष्वाक हरिश्चन्द्र का जो महोदर था वह भी क्रम से अल्प होता गया। अन्तिम ऋचा का उच्चारण होने पर समस्त बन्धन की मुक्ति हो गयी। इक्ष्वाकुवंशधर हरिश्चन्द्र भी रोग मुक्त हो गया।

टिप्पणी

सरलार्थ- ऋचाओं के उच्चारित होने पर पर शुन:शेप का बन्धन मुक्त हो जाता है। इक्ष्वाकुवंशधर का महोदर भी क्षुद्र हो गया। अन्तिम ऋचा का उच्चारण होने पर समस्त बन्धन की मुक्ति होगयी। इक्ष्वाकुवंशधर हरिश्चन्द्र भी रोग मुक्त हो गया।

व्याकरण-

- मुमुचे- मुच -धातु से लिट्-लकार प्रथम पुरुष बहुवचन में यह रूप बनता है।

पाठगत प्रश्न

95. मुझे एक सौ गायें दो यह वाक्य किसने बोला?
96. किसने उसे एक सौ गायें दी?
97. सूयवस पुत्र अजीगर्त ने पुन: किस लिए गायें माँगी?
98. देवों में कौन निकटतम है?
99. अग्नि ही देवों में सबसे निकटतम इस उक्ति को किसने प्रत्युक्त किया?
100. अग्नि ने शुन:शेप को क्या कहा?
101. सविता ने शुन:शेप को क्या कहा?
102. वरुण ने शुन:शेप को क्या कहा ?
103. विश्वेदेव शुन:शेप के किस मन्त्र से स्तुत हुआ?
104. किसकी स्तुति के बाद शुन:शेप पाश से उन्मुक्त हुआ?

पाठ का सार

इस पाठ में शुन:शेप उपाख्यान दो खण्डो में वर्णित है। दोनों खण्डों में जो कहा गया है वह सार रूप से कहते हैं। तृतीय खण्ड में जब रोहित अरण्य से अपने पिता के उदररोग के कारण गाँव आ रहा था तब इन्द्र ब्राह्मण के रूप में उसके समीप आया। उस ब्राह्मण ने उसे पर्यटन का माहात्म्य बताया। उस माहात्म्य को समझ कर रोहित छह वर्ष तक अरण्य में घूमता रहा। छठे वर्ष उसे अजीगर्त का साक्षात्कार हुआ। वहाँ उसने अजीगर्त के एक पुत्र को सौ गायों के बदले माँगा। अजीगर्त ने मध्यमपुत्र शुन:शेप उसको दे दिया। रोहित उसको लेकर घर आगया।

इसी प्रकार चतुर्थ खण्ड में हरिश्चन्द्र के घर पर यज्ञ आयोजित किया गया। वहाँ अजीगर्त एक सौ गायों के बदले अपने पुत्र शुन:शेप के वध के लिए प्रवृत्त हुआ। यह सब देख कर उसने प्रजापति को आहूत किया। प्रजापति ने अग्नि की स्तुति के लिए कहा। अग्नि ने सविता की

स्तुति के लिए कहा। सविता ने वरुण की स्तुति के लिए कहा। वरुण ने अग्नि की स्तुति के लिए कहा। अग्नि ने विश्वदेवों की स्तुति के लिए कहा। विश्वेदेवों ने इन्द्र की स्तुति के लिए कहा। इन्द्र ने दो अश्विनी कुमारों की स्तुति के लिए कहा। दोनों अश्विनि कुमारों ने उषा देवी की स्तुति के लिए कहा। इस प्रकार उषा देवी की स्तुति के बाद वह पाशमुक्त हो गया।

पाठांत प्रश्न

105. रोहित और इन्द्र के वार्तालाप का वर्णन करो?

106. अजीगर्त और शुन:शेप के मध्य वार्तालाप का वर्णन करो?

107. शुन:शेप की देवों के प्रति प्रार्थना का वर्णन करो?

108. चतुर्थ खण्ड का सार लिखो?

109. तृतीय खण्ड का सार लिखो?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तरकूट-1

110. वरुण का

111. रोहित का

112. राजा को

113. रोहित

114. जो जन आसनस्थ होता है।

115. जो उत्थित होता है।

116. जो शयित होता है।

117. जो पर्यटन करता है।

118. छह वर्ष।

119. श्रेय वस्तु।

उत्तरकूट-2

120. सूयवस पुत्र अजीगर्त।

121. हरिश्चन्द्र।

122. यज्ञ के बाद वध करूँगा ऐसा सोच कर।

123. अग्नि ही।

124. प्रजापति शुनशेप के प्रति।

125. सविता ही प्रेरणा दान में समर्थ है।

126. तू राजा वरुण के लिए यूप में बंधा हुआ है। तू उसी की उपासना कर।

127. अग्नि ही देवों में मुख्य है, वह ही श्रेष्ठ सुहृत् है, अत: शीघ्र ही उसको उद्देश्य करके स्तुति कर।

128. नमो महद्भ्यो नमोऽकर्मकेभ्य:।

129. उषा देवी से।

तेरहवाँ पाठ समाप्त